Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 01-03-2021, Accepted: 02-04-2021, Published: 02-05-2021
Volume 2, Issue 1, 2021, Page No. 16-23

'धरती - धन न अपना' में दलित जीवन, संघर्ष और चेतना

डॉ. मिनी जोर्ज
असोसियेट प्रोफसर, विभागाध्यक्षा और शोध निर्देशक, हिन्दी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग कैथोलिक्केट कॉलेज, पत्तनमतिट्टा, केरल, भारत

सारांश
प्रगतिवादी चेतना संपन्न उपन्यासकार श्री जगदीश चन्द्र जी स्वातंत्र्योत्तर काल के हिन्दी उपन्यास लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'धरति धन न अपना' उनका पहला उपन्यास (सन् 1972) है। प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य रूप से, ग्रामीण अंचल में सदियों से जुल्म की चक्की में पिस रहे ग्रामीण हरिजनों और भूमिहीन मज़दूरों की समस्याओं को केन्द्र में रखा गया है। साथ में उपन्यासकार ने समाज के मुख्य प्रवाह में दलितों को मिलाने का महान उद्देश्य भी रखा है। वास्तव में सामन्ती उत्पीडन और शोषण के खिलाफ हरिजन शोषितों का यह संघर्ष समाज को नई दिशा देनेवाला है। चाहे सफलता न मिली हो परन्तु यह संघर्ष सामन्ती मूल्यों को खतमं करने की चुनौती ही है। ज़मीनदारों पर दबाव डालने केलिए दलितों का जागरण और नेतृत्व अत्यन्त ज़रूरी है। मनुष्य को मनुष्य न रहने देनेवाले, मनुष्य को मृग मानकर व्यवहार करनेवाले सामन्ती संस्कारों का अन्त जब तक नहीं होगा तब तक मानव और मानवता की हत्या होती ही रहेगी।

मूलशब्द: अंचल, जुल्स, उत्पीडन, मानव, मानवता

प्रस्तावना

प्रगतिवादी चेतना संपन्न उपन्यासकार श्री जगदीश चन्द्र जी स्वातंत्र्योत्तर काल के हिन्दी उपन्यास लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'धरति धन न अपना' उनका पहला उपन्यास (सन् 1972) है। उनका समस्त कथा साहित्य भारतीय गाँव के उत्पीडन, शोषण और गरीबी के बीच से गुज़रते हुए जीवन का लेखा - जोखा है। उन्होंने समाज में दलितों पर हो रहे अत्याचारों को एवं दलितों के दर्दनाक जीवन को अपनी आँखों से देखा था। 'धरती धन न अपना' उपन्यास की भूमिका में उपन्यासकार की स्वीकारोक्ति है - "मैं यह सब देखकर बहुत ही उद्विग्न होता था कि आर्थिक अभावों की चक्की में युग - युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं। जिस भूमि पर वे रहते हैं, जिस ज़मीन को वे जोतते हैं, यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहते हैं कुछ भी उनका नहीं है। इन्हीं बातों को देखकर मेरे किशोर मन की वेदना सहसा अपने सभी बाँध तोडकर फूट निकली और मैं ने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया। प्रस्तुत उपन्यास लिखने का मूल प्रेरणा बिन्दु यही हैं।"[1] उपन्यास में मुख्य रूप से, ग्रामीण अंचल में

सदियों से जुल्म की चक्की में पिस रहे ग्रामीण हरिजनों और भूमिहीन मज़दूरों की समस्याओं को केन्द्र में रखा गया है। साथ में उपन्यासकार ने समाज के मुख्य प्रवाह में दलितों को मिलाने का महान उद्देश्य भी रखा है।

उपन्यास के केन्द्र में पंजाब के जिला होशियारपुर का घोडेवाहा गाँव और गाँव के बाहर की हरिजनों की बस्ती 'चमादडी' में रहनेवाले लोगों का जीवन ही है। बस्ती और बस्ती के लोगों के हृदय भेदी रहन - सहन का चित्र लेखक ने खींचा है - छोटे - छोटे कच्चे मकान, सीलन भरी अन्धेरी कोठरी, मटमैले रंग के "छोटे- छोटे कच्चे मकान, सीलन भरी अन्धेरी कोठरी, मटमैले रंग के छोटे - छोटे कोठें, तंग गली, मुहल्ले के बाहर गोबर और कूडे के ढेर, कच्ची खुरदरी - बोदी दीवारें झुकी हुई छत, टूटे किवाड।"[2] आगे उपन्यासकार ने यहाँ के जनजीवन को इस प्रकार साकार कर दिया है - "गाँव के नाक सुड - सूडाते, नँग - धडंगा बच्चे, औरतों के मैले - कुचले, फटे - पुराने कपडे, और कपडों से पसीनों की दुर्गन्ध।"[3] यहाँ स्पष्ट हो उठता है कि चमारों का जीवन कितना अभावग्रस्त है।

उपन्यास का नायक काली चमादडी के चमार माखे का पुत्र है, जो छः - सात साल बाद शिक्षित होकर कानपुर में किसी मिल में नौकरी करके कुछ पैसा कमाकर अपने गाँव 'घोडेवाहा' लौटा है। उपन्यास का प्रारंभ काली के पुनरागमन से होता है। नई चेतना या दलितों के उद्धार की आशा लेकर काली गाँव वापस आता है। काली की शिक्षा और अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण चमादडी के सब लोग उसे इज्जत की नज़रों से देखते हैं, आदर करते हैं। गाँव आने पर काली ने समझ लिया कि दलितों का शोषण पूर्ववत् चल रहा है। "उनका जीवन न केवल आर्थिक अभावों से ग्रस्त है, बल्कि शारीरिक और मानसिक रूप से भी प्रताडित है।"[4] जीतु के सख्त और प्रौढ शरीर को देखकर काली को महसूस हुआ कि बालपन के बाद जीतू पर यौवन और बूढापा एक साथ ही शुरु हो गया है।

सामन्ती अत्याचारों की तह में दलित चेतना दब गयी है। चमारों को मारना - पीटना, उनसे मज़दूरी दिए बिना काम कराना, उनका आर्थिक शोषण करना ज़मीन्दारों केलिए साधारण सी बातें हैं। किसी चौधरी की फसल कट दिए जाने पर, उनके यहाँ छोटी - मोटी चोरी हो जाने पर, कोई चमार चौधरी के काम पर न जाने पर या बिना मज़दूरी से चौधरी के काम करने का विरोध करने पर उसकी पिटाई हो जाती है। इसके पीछे का कारण केवल चमार होना मात्र है। जगदीशचन्द्र जी ने इस अन्याय को स्पष्ट किया है - "चमादडी में ऐसी घटनाएँ (किसी चमार की पिटाई) कोई नई बात नहीं थी। ऐसा अक्सर होता रहता था। जब किसी चौधरी की फसल चोरी से कट जाती या बरबाद हो जाती या चमार चौधरी के काम पर न जाता, फिर किसी चौधरी के अन्दर ज़मीन की मल्कियत का अहसास ज़ोर पकड लेता तो वह अपनी साख बनाने और अपना चौधरापन मनवाने केलिए इस मुहल्ले में चला जाता"[5]। चमारों की इस दशा के पीछे सामाजिक विषमता के साथ - साथ उनकी आर्थिक पराधीनता भी उतनी ही जिम्मेवार है।

दलित जातियों की स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या हमारे समाज की एक धिनौनी समस्या है। गाँव के सत्ताधीश संपन्न वर्ग के ज़मीनदार लोगों के घर में मेहनत मज़दूरी का काम करती दलित नारियों की विवशता का लाभ उठाकर ये लोग उनका यौन शोषण करते हैं। इतना ही नहीं वे इसे अपना जन्म सिद्ध अधिकार ही मानते हैं। श्री जगदीश चन्द्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में नारी शोषण की इस समस्या को उसकी भीषणता के साथ प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में दलित नारी शोषण गहराई के साथ चित्रित है। गाँव के चौधरी वहाँ के चमारों को अपना गुलाम समझकर उनकी स्त्रियों को अपनी कामपूर्ती का साधन बनाते हैं। दलित नारी के यौन शोषण के पीछे उनकी गरीबी ही एक मुख्यं कारण है। ये नारियाँ

आर्थिक विपन्नता की वजह से चौधरियों के नाजायज बच्चों की माँ भी बनती हैं। इस सिलसिले में प्रीति बारह बच्चे की माँ बनती है। बेबे हुकमा ने तेरह बच्चे को जन्म दिया था। चौधरी हरनाम सिंह का भतीजा हरदेव मंगु की सहायता से प्रीतो की जवान लडकी लच्छी की इज्जत दिन - दहाडे लूटता है। लच्छो अविवाहित है, उसका भविष्य क्या होगा। लच्छो को अपनी इज्जत लुटवाने के बाद भी हरदेव के घर से बासी रोटियों के अलावा कुछ नहीं मिलता। "लच्छो चौंक, गयी और आटा गूँधती हुई सोचने लगी कि माँ घर से आटा उधार माँगने गयी तो आटा ले आयी। अमरू देगचा बेचकर आटा और गुड दोनों ले आया लेकिन वह अपना सबकुछ लुटाकर भी खाली हाथ वापस आ गयी।"[6] हरनाम सिंह भी अपनी जवानी में प्रीता का यौन शोषण किया था। उसका पति यह जानकर भी अपनी गरीबी और लाचारी के कारण मन मसोस कर रह जाता था। मंगु बडा बेगैरत इन्सान है। वह इतना बेशर्म है कि उसके सामने हरदेव जैसे चौधरीगण संगठित होकर उसकी ही बहन ज्ञानो की छातियों की तुलना कच्चे खरबूजे से करके उसका यौन शोषण भी करना चाहते थे तो वह चुप रहता है। इस उपन्यास में चित्रित नारी शोषण के सन्दर्भ में अंजली जी ने लिखा है - "चौधरी लोग गाँव की धरती और धन के ही नहीं अपने कमीनों के शरीर तक के मालिक हैं। चमारिनें उनकी दासियाँ हैं, कामपूर्ति के उपकरण हैं। चमादडी में लच्छे, प्रीतो, पाशों जैसी अनेक दलित नारियाँ चौधरियों के भोग के शिकार हैं।"[7]

'धरती धन न अपना' में लेखक ने दलितों के धर्म परिवर्तन का चित्र भी खींचा है। पादरी एक ओर गाँव-गाँव जाकर हिन्दु - देवी - देवताओं को निरर्थक ठहराकर ईसाई बनने के बाद मिलनेवाले फायदा की लालच देकर दलितों का धर्म परिवर्चन करता है। दूसरी ओर दलित लोग अपने जातीय पद व शोषण से मुक्त होने केलिए धर्म परिवर्तन करते हैं। घोडेवाहा गाँव के चमार हिन्दु धर्मावलम्बियों के अत्याचारों और शोषण से आतंकित हैं। चमार होने की वजह से उनको गाँव के कुएँ से पानी नहीं भरने दिया जाता है, उनकेलिए मन्दिर - प्रवेश निषेध है, और रोजी - रोटी भी अपर्याप्त है और निम्न जाति के होने के कारण अत्याचार सहन करने पडते हैं। ईसाई बना नन्ददास काली से कहता है- "गाँव में चमार होना तो सबसे बडा पाप है। घोर लांछन है। दो कौडी का मालिक काश्ताकार अपने चमार को छट्ठी का दूध पिला देता है। ... मुझे 'चमार' शब्द से ही नफरत है। मुझे कोई चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है।"[8] ईसाई धर्म अपनाने पर पादरी नन्दसिंह की कई प्रकार से मदद करती है। यह उल्लेखनीय बात है कि दलितों का धर्मपरिवर्तन हिन्दु धर्म के ठेकेदारों केलिए अहस्य हो जाता है क्योंकि इसी वजह से गुलाम की संख्या कम हो जाएगी। इसलिए पंडित संताराम और महाशय तीर्थाराम जैसे लोग इसका विरोध करते हैं।

धर्मपरिवर्तन का दूसरा पहलू है कि इसके पीछे पादरी का स्वार्थभाव ही कायम रहता है ताकि उसके धर्म के सदस्यों की संख्या बढ जाएगी। यही पादरी गाँव में बाइकॉट के वक्त चमारों की रक्षा करने से मुँह मोड लेता है क्योंकि उसे पता चल जाता है कि चमार किसी भी शर्त पर धर्मपरिवर्तन नहीं करेंगे। काली से अवैध गर्भवती हुई ज्ञानो नाबालिग होने के कारण धर्म परिवर्तन नहीं कर सकती है। इस ढेढे - मेढे न्याय को बताकर पादरी काली और ज्ञानों को विपत्ती के समय मदद नहीं करता क्योंकि वह धर्म परिवर्तन नहीं कर सकेंगे। इस सन्दर्भ में डॉ कुँवर पाल सिंह का मत आलोच्य है- "ईसाई पादरी के प्रसंग से धार्मिक नौतिकता के उस खोखलेपन को सामने लाया गया है, जो बहुत कठिनाई के क्षणों में काली और ज्ञानो को आत्महत्या करने पर विवश कर देती है।"[9] यहाँ यह स्पष्ट है कि दलितों के धर्म परिवर्तन से उसका जात तो नहीं बदल जाता। यहाँ लेखक का निष्कर्ष यह है कि "जाति चिन्ता मनुष्य के मन की गरहाइयों में

स्थित है जिसे उखाड फेंके बिना समाज की उन्नति संभव नहीं।"[10] अभी दलितों की शोषण परम्परा चल रही है।

उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के बीच में ही नहीं, निम्नजातियों के बीच में भी ऊँच-नीच की समस्या और संघर्ष चल रहा है। "पंडे पुरोहितों ने निम्न जातियों में भी अनेक उपजातियों का जाल बुन दिया है और वहाँ भी ऊँच - नीच का ख्याल उनके दिमागों में बुरी तरह से चस्पा हो गया है।"[11] धरती धन न अपना उपन्यास में हमें ऊँची नीची जातियों में संतरण की भावना का उल्लेख मिलता है। काली और ज्ञानों दोनों प्रेमी - प्रेमिका और दलित जाति के हैं किन्तु उनकी उपजातियाँ अलग - अलग हैं। ये लोग परस्पर एक - दूसरे को, एक - दूसरे में ऊँच - नीच समझते हैं। ज्ञानो काली से गर्भवती हो जाती है। दोनों का विवाह हो जाए तो यह समस्या आसानी से हल हो सकती है परन्तु इस जातिगत ढाँचे में वह असंभव हो जाता है। ज्ञानो से विवाह करने केलिए काली ईसाई बन जाना चाहता है परन्तु ज्ञानो नाबालिग है अतः पादरी कोई खतरा उठाना नहीं चाहता। ज्ञानो की माँ बेटी को विष देकर मार डालती है। काली ज्ञानो के प्रेम में पागल होकर पुनः शहर की ओर भाग जाता है। अपने ऊपर लादे जा रहे अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध अंगडाई लेने के लिए दलित जातियों का संगठित होना आवश्यक है, मगर उन्हीं के बीच का जातिगत उतार - चढाव दलितों केलिए हानिकारक और अगडी जाति केलिए लाभदायक है।

'धरती धन न अपना' में उभर आया वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद से प्रभावित है। यहाँ उच्च वर्ग के चौधरी एवं निम्न वर्ग के चमारों के बीच वर्ग - संघर्ष होता है। गाँव के चौधरी वर्ग के शोषण, अन्याय और अत्याचार से तंग आकर शोषित दलित वर्ग उनसे संघर्ष करते हैं। गाँव में भारी वर्षा की वजह से नदी में बाढ आने पर, बाढ से गाँव की सुरक्षा करने हेतु गाँववाले नदी के सामनेवाला बाँध तोड देते हैं, तभी वहाँ एक छेद हो जाता है। चौधरी लोग मज़दूरी की आशा देकर चमादडी के सभी चमारों को छेद को पूरने केलिए लगाये देते हैं। लेकिन दो दिन तक उन्हें मज़दूरी नहीं दी जाती तब उनमें विद्रोह की भावना धधक उठती है। तीसरे दिन काम किए बिना इकट्ठा होकर बैठे तो चौधरी आकर कहता है - "कोई दिहाडी नहीं मिलेगी। उठो काम करो। वरना मार - मारकर एक - एक का सिर तरबूज के खप्पर जैसा बना दूँगा।"[12] शिक्षित और आत्म निर्भर होकर शहर से गाँव वापस आए काली को एक लक्ष्य था। उसमें शहरी मज़दूर संगठनाओं और शोषितों के अधिकार के प्रति सजगत थी। वह उच्चवर्ग की इस शोषण वृत्ति के सामने सिर ऊँचा करके दृढ स्वर में उत्तर देता है कि - "मैं बिना पैसों के काम नहीं करूँगा। मैं किसी के पास गिरवी नहीं पडा हूँ जो बेगार करूँ।"[13] गाँव के चौधरी लोग चमारों को मज़दूरी नहीं देने का तय कर लेते हैं, तब काली उनका काम छोडकर चलने लगता है। उसे जाते देख चमादडी के अन्य दलितों का साहस भी बढ गया और वे उसके पीछे लौटे। काली ने अधिकांश चमार युवकों को एकत्रित करके संगठन बनाया और अपने पर हो रहे सारे अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष करने की हिम्मत देने लगा। डॉ. किशनदास, जो मार्क्सवाद से प्रभावित व्यक्ति है, काली को मार्क्सवाद का व्यावहारिक ज्ञान देकर वर्ग संघर्ष ज़ारी रखने की सलाह देता है। आगे दलित वर्ग संगठित होकर हडताल ज़ारी रखते हैं। पाँच दिन तक यह चलती रही। फलतः मज़दूरों के अभाव में चौधरियों की फसल बरबाद हो चुकी थी। छठवें दिन यह शोषक वर्ग शोषितों के सामने हार मानकर अपना बाईकाट खतम करते हैं। चौधरी हरनाम सिंह अपने वर्ग का निर्णय सुनाता है कि - "हर घर अपने - अपने चमार को पैसे दे दे।"[14] संगठित होकर संघर्ष करने से ही दलितों की मुक्ति सफलता प्राप्त कर सकती है।

उच्च वर्ग के अत्याचार, शोषण एवं अन्याय से आतंकित होकर निम्नवर्ग में इनके विरोध में क्रान्ति की आग उत्पन्न होती है। श्री जगदीश चन्द्र जी ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चमार दलित जाति की प्रताडना, यातना और शोषण के दुःख दर्द से उपजी उनकी संघर्षात्मक चेतना की आन्तरिक पर्तों को तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के अनुरूप चित्रित किया है । दलितों की हृदयभेदी विवशता, प्रताडना मज़बूरियों एवं शोषण ने उनके अन्दर क्रान्ति की जो चिनगारियों फूँकी वह दिन - ब - दिन सुलागती रहती हैं। आखिर वह लावारस की तरह धधक उठती है।

उपन्यास का नायक काली छः वर्ष के बाद शिक्षित और आत्मनिर्भर बनकर गाँव लौट आने का मुख्य उद्देश्य शोषितों को अपने अधिकार के प्रति सजग बनाकर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए उनका संघठन करना ही है। वह एक ओर अपने चमादडी गाँव में एक महीन मकान बनवाकर शोषक वर्ग या चौधरियों के स्तर को चुनौती देना चाहता था। दूसरी और अपने ही नेतृत्व में चमारों का उद्धार करना चाहता था। वह अपनी ही जाति के चमारों पर हो रहे अन्याय और अत्याचारों के बारे में दुकानदार छज्जू शाह से कहता है - "मुझे सो समझ नहीं आता कि लोग मारने का हौसला कैसे कर लेते हैं और कसूर न होते हुए लोग मार क्यों खा लेते हैं।"[15] चौधरी द्वारा सन्तु और जीतु पर किए गए गए अत्याचारों या मार - पिटाई पर काली उनको मुँह - तोड जवाव देना चाहता है। वह अपनी चाची के सामने यह रोष प्रकट करता है - "चाची, चौधरी ने जीतु को नाजायज मारा है। उसका कोई कसूर नहीं था। अगर जीतु की जगह मैं होता तो चौधरी की बाँह मरोड देता।"[16] काली का यह जागरण अन्याय के प्रति दलितों की जागरूकता है। यहाँ अत्याचार के प्रति काली के मन का आक्रोश और सामना करने की कटिबद्धता दलितोद्धार का सशक्त साधन है। सवर्ण चौधरी लोग चमारों को पशुतुल्य मानते हैं। चौधरी हरनाम सिंह मंगु को हमेशा 'कुत्ता', 'चमार' पुकारता है। इस तुच्छ शब्दों से काली को चिढ होती है। जातिगत शोषण और अत्याचार के प्रति सचेत हुए काली के बारे में उपन्यासकार कहते हैं - "काली गर्दन झुकाए हुए सोच रहा था कि चौधरी ने मंगु को कुत्ता चमार क्यों कहा। काली अपने क्रोध को दबाता हुआ उठ खडा हुआ।"[17] काली यह सिद्ध करना चाहता है कि दलित पशु नहीं विकारशील व विचारशील मनुष्य है। ज़मीनदार द्वारा ग्रामवासियों की पिटाई करना, भय एवं आतंक जमाना, ज़मीन हडपना, दलितों द्वारा मुफ्त काम करवाना जैसे शोषण चौधरियों की मतलबी प्रवृत्ति ही है। आर्थिक अभाव के कारण ये अज्ञानी, भोले - भाले दलित लोग अपना कसूर न होते हुए भी चौधरियों के अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहते हैं। परन्तु अब उन्हें अपने अधिकारों का बोध है। कहीं - कहीं उनसे विरोध के शब्द निकलते हैं। "चौधरी हरनाम सिंह जब जीतु से मारते - मारते पूछता है कि तुमने जानवरों को मेरे खेत में क्यों हाँका था। लेकिन जीतु कुछ कहता नहीं सिर्फ क्रोध भरी नज़रों से चौधरी की ओर ताकता है। चौधरी जब उसके सिर पर जूता मारने केलिए हाथ उठाता है तो जीतु उसका हाथ पकडने की कोशिश करता है।"[18] कोई भी चौधरी चमादडी में आकर चमारों की पिटाई कर चला जाता था । इस गाँव के चमार अत्याचारों के भय से आतंकित होने के कारण उनमें विरोध प्रकट करने की ताकत पहले नहीं थी अब ज़रा ज़रा प्रतिशोध उभर आया है।

उपन्यासकार ने काली के माध्यम से प्रगतिवादी चेतना को उभारा है। घोडेवाहा गाँव में केवल काली मात्र पढा-लिखा युवक है। अपनी शिक्षा, चेतना तथा आर्थिक संपन्नता की वजह से अन्याय, अत्याचार और शोषण के खिलाफ लडता है। क्रान्तिकारी काली गाँव में अपना पक्का मकान बनाने के सिलसिला में चौधरी के दास चमार मंगु से हाथा पाई हो जाने से पहले तो उसे चौधरी से डर लगता है किन्तु बाद में वह धैर्य संभालता

है कि - "समय आने पर वह चौधरी से भी निपट लेगा। डर - डर कर दिन गुज़ारने से मर जाना अच्छा है।"[19] काली गाँव के लोगों को संघठित करके अपने उद्धार का मार्ग सशक्त करने का आह्वान करता है। किन्तु काली के प्रगति का कदम तोडने का श्रम ज़मीनदार लोग करते हैं। चौधरी काली को डरा - घमकाने की कोशिश करता है किन्तु काली विद्रोही आवाज़ में कहता है - "शरारत पहले भी होती थी लेकिन लोग चुपचाप सहन कर लेते थे। मैं उस समय चुप नहीं रह सकता जब पानी सिर से गुज़रने लगता है।"[20]

गाँव के चौधरी नन्दसिंह से जूते बनवाकर उसे पैसा नहीं देते बल्कि रौब से डाँट- फटकर कर चुप कर देते हैं और गालियाँ भी देते हैं। ऐसे एक अवसर विद्रोही काली कहता है - "चौधरी क्यों ज़ोर जबर्दस्ती करता है, अपनी मेहनत के पैसे माँगे हैं, कोई डांग (लाठी) नहीं मारी है"[21] काली एक ऐसा सशक्त पात्र है जो उच्च जाती के अत्याचारों के भय से झुक नहीं जाता है।

'धरती धन्न अपना' उपन्यास में काली, ज्ञानों, बाबा फत्तु, ताया बसन्ता, जीतु जैसे पात्रों में भी वर्ग - संघर्ष की चेतना का उदय एवं विकास हम देख सकते हैं। डॉ. बिशनदास चैधरी धडडम की 'काला ब्राह्मण और गोरे चमार के हरामी होने' की बात का विरोध करते हुए कहता है कि - "यह बिलकुल अनसाइंटिफिक थ्यौरी है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि खून काले आदमी का हो या गोरे एक जैसा ही होता है। इस झगडे की असली वजह प्रोलतारी तबका जाग उठने से पैदा हुआ है। उसे अपने अधिकारों का एहसास होने लगा है, जिससे चमार अब जाट का रौब वर्दश्त नहीं करेगा।"[22] इसी वजह से दलित नारी भी अब जागृत हो रही है। उपन्यास की नायिका ज्ञानो का चरित्र इसका प्रमाण है जो दलित नारी - क्रान्ति को व्यक्त करती है। वह विद्रोही युवक काली की प्रेमिका है। वह अपनी जातियों पर हो रही ज़मीनादारी शोषण नीति से सचेत होकर इसके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करती है। मंगु चमार द्वारा शिकायत करने पर चौधरी हरनाम सिंह बडी ही निर्दयता से जीतु की नाजायज पिटाई करके उसे लहु - लूहान कर देता है। तब इसकी प्रतिक्रिया में मंगु की बहिन ज्ञाना चौधरी को गालियाँ देती है और मूक दर्शक बनकर खडे रहे उसके बिरादरी के लोगों को वह क्रुद्ध भाव से, घृणा की दृष्टि से देखती भी है। बेबे हुकमा द्वारा इस पर भय दिखाने पर वह कहती है कि - "क्या करूँ। नाजायज बात देखकर मुझे गुस्सा आ जाता है। चुप नहीं रहा जाता।"[23] काली के व्यक्तित्व पर आकृष्ट ज्ञानों हमेशा काली को अन्याय के विरुद्ध लडने का धैर्य एवं प्रेरणा देती है। उपन्यास के अन्त में काली ने चौधरियों से तंग आकर गाँव छोडने का निश्चय किया तो ज्ञानो उसे क्रुद्ध स्वर में समझाती है कि - "मैं तो समझती थी कि तू जिगरवाला आदमी है। तू आसानी से दबनेवाला नहीं है। तेरे से गली के कुत्ते अच्छे हैं जो मारने पर आगे से धूरते तो हैं।"[24] इस कथन में धैर्य, साहस और प्रेरणा की ध्वनि है।

धीरे - धीरे काली, ज्ञानों जैसे वीरों के नेतृत्व में चौधरियों की अनैतिकताओं और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस चमार प्राप्त करते हैं। चौधरियों के आदेशानुसार मज़दूरी की लालच में चमार लोग तीन दिन तक बाँध में किए गए छेद को पूरने का काम करते हैं। किन्तु उन्हें मज़दूरी नहीं दी जाती, उसके बदले चमारों पर क्रूर अत्याचार करते हैं। यहाँ काली चौधरियों के सामने यह प्रतिज्ञा लेता है कि बिना मज़दूरी का काम नहीं करेगा। पैसा माँगन जब काली जाता है तब चौधरी उसे भी गालियाँ देता है तब काली उसका भी सख्त विरोध करता है - "चौधरी ये गालियाँ मुझे भी आती है। मुँह संभालकर बात कर। हम मेहनत बेचते हैं, इज्जत नहीं। माँ- बहने सबके घर में है।"[25] अपने पसीने की कमाई पाने की काली की विद्रोही चेतना मुँह तोड जवाब, दृढ व्यक्तित्व और अपूर्व साहस सभी चमारों को संगठित कर देते हैं। गाँव के चमारों के छः दिन की संगठित हडताल के सामने चौधरियों

को मुँह बन्द कर पराजय स्वीकार करना पडा। चमारों को मज़दूरी भी मिली।

उल्लेखनीय बात यह है कि उपन्यास की शुरुआत में काली जाग्रत दलित युवक था। इसलिए वह गाँव के चमारों को इकट्ठा करके अन्याय के विरुद्ध लडाई करता है, सफला भी हो जाता है किन्तु उपन्यास के अन्त में आते ही उसकी दृढता व संघठन- क्षमता कमज़ोर हो जाती है। आगे उसके घसियारा बनना, फिर लल्लू की हलवाई करना, घर का सपना अधूरा छोट देना, ज्ञानों को न अपना सकना विक्षिप्त होकर गाँव से पलायन करना इसका प्रमाण है। पहले चौधरी हरनाम सिंह द्वारा जितु की पिटाई होने पर काली के मन में यह प्रश्न उभर आया था कि दलित लोग क्यों मूक दर्शक बने हो।

बाद में छज्जूशाह के मुँह से काली को अपने प्रश्न का उत्तर मिलता है। काली रूपयों के अभाव में अपनी अधूरे मकान की पूर्ति केलिए मकान की जमीन ज़मानत के दौर पर रखकर छज्जुशाह से उधार माँगने गया तो छज्जुशाह ने समझाया - "कालिदास जिस ज़मीन की तुम बात कर रहे हो वह ज़मीन भी तुम्हारी नहीं है। वह शामलात (गाँव के ज़मीनदारों की साझी ज़मीन) ज़मीन है। जब तक तू या तेरे वारिस (उत्तराधिकारी) इस गाँव में रहेंगे, ज़मीन का वह टुकडा रिहायश केलिए तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गाँव होगा। वह तेरी मालिकियती ज़मीन नहीं है, मौरूसी ज़मीन है।"[26] काली ने अपने मन को भी समझाया कि यह ज़मीन चौधरी की है। जिन रास्तों पर वे चल रहे हैं वह भी चौधरी की ज़मीन है। गाँव की सारी संपत्ति के स्वामी चौधरी ही है। 'धरती धन न अपना' है।

वास्तव में सामन्ती उन्पीडन और शोषण के खिलाफ हरिजन शोषितों का यह संघर्ष समाज को नई दिशा देनेवाला है। चाहे सफलता न मिली हो परन्तु यह संघर्ष सामन्ती मूल्यों को खतमं करने की चुनौती ही है। ज़मीनदारों पर दबाव डालने केलिए दलितों का जागरण और नेतृत्व अत्यन्त ज़रूरी है। मनुष्य को मनुष्य न रहने देनेवाले, मनुष्य को मृग मानकर व्यवहार करनेवाले सामन्ती संस्कारों का अन्त जब तक नहीं होगा तब तक मानव और मानवता की हत्या होती ही रहेगी।

संदर्भ

1. डॉ. जगदीश चन्द्र - धरती - धन न अपना, राजकमल - प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1981, पृ.7,
2. वही. पृ. 10,
3. वही. पृ. 34,
4. वही. पृ. 16,
5. वही. पृ. 27,
6. वही. पृ. 103,
7. वसाणी कृष्णवंती पी - दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना, जागृति प्रकाशन, कानपुर, सं. 2010, पृ.157,
8. डॉ. जगदीश चन्द्र - धरती धन न अपना, सं. 1981, पृ.190,
9. डॉ. कुवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1992, पृ.186,
10. वसाणी कृष्णावंती पी - दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना, पृ.160,
11. डॉ. एन.एस. परवार - दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, सं.2010, पृ.200,
12. डॉ. जगदीश चन्द्र - धरती धन न अपना, पृ. 233,
13. वही. पृ.236,
14. वही. पृ. 260,
15. वही. पृ. 21,
16. वही. पृ. 27,
17. वही. पृ. 51,
18. वही. पृ. 22,

19. वही. पृ. 63,
20. वही. पृ. 84,
21. वही. पृ. 200,
22. वही. पृ. 174,
23. वही. पृ. 24,
24. वही. पृ. 209,
25. वही. पृ. 235,
26. वही. पृ.190.